सही। मुगल सम्राट अकबर ने तानसेन को रींवा नरेश रामचंद्र से मांगकर ही लिया था और राजा रामचंद्र ने अनिच्छापूर्वक तानसेन को भेजा था, क्योंकि वे अकबर से दुश्मनी नहीं मोल ले सकते थे। कहते हैं कि अपने राज्य की सीमा तक रींवा के राजा रामचंद्र स्वयं तानसेन की पालकी को कंधा देकर विदा करने गये थे। और, अकबर ने तानसेन का गाना सुनते ही उन्हें अपने नौ रत्नों में शामिल कर लिया था।

लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली, आगरा, दतिया, देवास, रींवा, मैसूर, रामपुर, कोल्हापुर, बड़ौदा, दरभंगा, रायगढ़, बनारस, इंदौर, अलवर, जौनपुर, भरतपुर, उदयपुर और जयपुर आदि राज्यों के शासक अपने सांगीतिक प्रेम के कारण सुविख्यात थे। इनके दरबार में एक से एक गायक-वादक और नर्तक रहते थे और ये लगभग सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त होकर अपने-अपने संगीत को और अधिक समृद्ध करने हेतु प्रयासरत रहते थे। यहां के अधिकांश महान् संगीतकार भी अपने स्थान विशेष के नाम के साथ ही जाने और पुकारे गये यथा उ. अल्लादिया खां कोल्हापुरवाले, उ. रजब अली खां रामपुर वाले, उ. अल्लाबंदे खां अलवर वाले, उ. फैयाज़ खां बड़ौदा वाले, उ. जकिरुद्दीन खां उदयपुर वाले, उ. बहराम खां जयपुर वाले, उ. इनायत खां गौरीपुर वाले, उ. निसार खां बदायूं वाले। जयपुर के लगभग सभी शासक इस दिशा में अग्रणी थे। यहां के शासकों ने यहां पर एक गुणिजन खाने का निर्माण करवाया था, जिसमें गायन, वादन और नृत्य के तमाम गुणिजन रहते थे, जिनकी पूरी व्यवस्था शासन की ओर से की जाती थी। जयपुर का इस क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण योगदान रहा है, तभी तो वहां ध्रुवपद गायन की एक परंपरा पनप सकी जिसे डागर परंपरा के गायकों ने काफी विस्तार दिया।

यहां के शासकों के प्रोत्साहन और संगीतकारों की कला क्षमता के प्रभाववश ही खयाल गायन की एक नयी शैली भी यहां विकसित हुई जिसे जयपुर घराना कहा गया। मांड आदि जैसी गायन शैलियां तो राजस्थान में ही जन्मी, पली और बढ़ी हैं। इस तरह कथक नृत्य की एक नयी शैली जयपुर में विकसित हुई जिसे जयपुर घराने का नाम मिला। आज नाथद्वारा परम्परा नाम से विख्यात पखावज का विशिष्ट बाज भी मूलत: जयपुर में ही विकसित हुआ। पहले इसे जयपुर घराना ही कहा जाता था। इस परंपरा के कलाकार बाद में श्रीनाथद्वारा में जाकर बस गये और अपनी परम्परा को श्रीनाथद्वारा परंपरा या घराना कहने लगे। किंतु उसका केंद्रीय बिंदु जयपुर ही था और है। इसी तरह रुद्रवीणा, विचित्र वीणा, सारंगी और सितार के भी कई महान् कलाकार इसी धरती की देन हैं।

जयपुर शहर में प्रायोगिक संगीत और नृत्य की परम्परा का चतुर्दिक विकास हुआ। भिन्न-भिन्न विधाओं के महान् संगीतज्ञों ने इस धरती पर आकर अपनी कला के गुणों को विकसित करते हुए उसमें नये आयाम जोड़ने का भी प्रशंसनीय कार्य किया। वीणा और सितार तथा ध्रुवपद और खयाल गायन का यहां पूर्ण विकास हुआ। यहां के शासकों ने सदैव ही संगीत और नृत्य जैसी विधाओं को सात्विक दृष्टि और भाव से देखा। उन्होंने इसे आनन्द का विषय तो माना किंतु सस्ते मनोरंजन या भोग विलास का नहीं। जयपुर घराने के कथक नृत्य में राधा-कृष्ण की पूरी प्रणय लीला

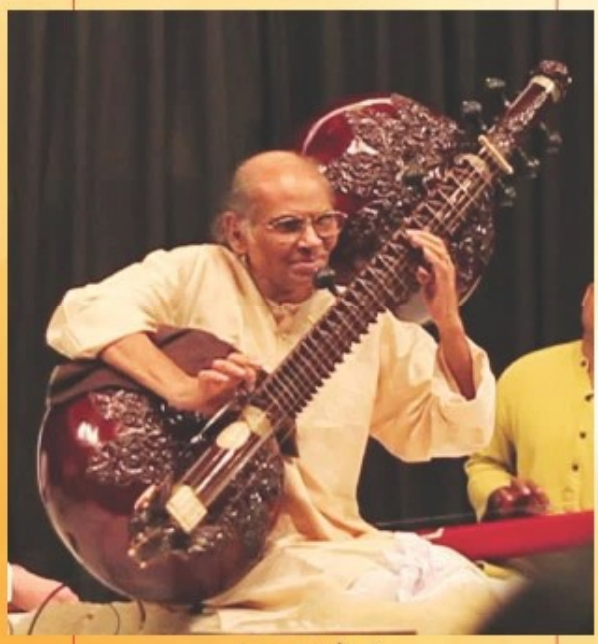

उ. असद अली खां

संपन्न हो जाती है बिना एक दूसरे को स्पर्श किये हुए, चुम्बन और आलिंगन तो बहुत दूर की बात है।

जयपुर के राजाओं के प्रोत्साहन के कारण ही अलग-अलग विधा, अलग-अलग घराने और अलग-अलग शहरों के कलाकार जयपुर में आकर एकत्रित होने लगे। फलस्वरूप उस समय जयपुर में एक ओर उस्ताद बहराम खां का ध्रुवपद गूंज रहा था तो दूसरी ओर धग्घे खुदाबख्श और उ. मुबारक अली खां की अलग-अलग शैली का खयाल भी। एक ओर उ. रजब अली खां का बीन अंग का सितार यहां झंकृत हो रहा था तो दूसरी ओर उ. इमरत सेन का सेनिया शैली का सितार भी। इन सबके साथ-साथ जयपुर निवासी उ. मोहम्मद अली खां का विद्वतापूर्ण खयाल गायन तो था ही। प्रसंगवश, यहां यह बता देना भी उचित होगा कि महान् संगीतोद्धारक चतुर पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जयपुर घराने के इन्हीं उ. मोहम्मद अली खां के शिष्य थे। इनसे प्राप्त अनेक रचनाओं का लेखन उन्होंने अपनी पुस्तकों में किया है।

यहां हम जयपुर घराने या राजस्थान की स्वर वाद्य संगीत परम्परा पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालते हैं-

जयपुर राज्य में राजकीय संगीतज्ञ के रूप में नियुक्त उ. रजब अली खां अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वीणा वादक माने जाते थे। ये मूलत: अलीगढ़ (उ.प्र.) के रहने वाले थे। इन्होंने संगीत की शिक्षा अंबैठा के उ. हसन खां और उ. इनायत हुसैन खां से प्राप्त की थी। इनका गला भी बहुत सुरीला था और गायन का अच्छा ज्ञान भी था इन्हें। व्यक्तिगत महफिलों में ये शौकिया रूप में कभी-कभी गाना गाते भी थे। किन्तु व्यावसायिक मंचों पर ये सिर्फ वीणा ही बजाते थे।

जयपुर के महाराजा रामसिंह इन्हें अपना गुरु मानकर बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने खां साहब को रहने के लिये एक हवेली और जागीर भी दे रखी थी। रजब अली खां को राजमहल में आने-जाने की इतनी स्वतंत्रता थी कि वे जब चाहें पालकी में बैठकर महल के किसी भी हिस्से में जा सकते थे और महाराज एक साधारण शिष्य की तरह उनका आवभगत तथा स्वागत-सत्कार करते थे।

ऐसे गुणी संगीतकार और गुणग्राही महाराज की गवाह है राजस्थान की रत्नगर्भा धरती। इसी दरबार को उ. बहराम खां, (ध्रुवपद) उ. घग्घे खुदाबख्श (खयाल), उ. मुबारक अली खां (कव्वाल बच्चों का ख्याल घराना), उ. इमरत सेन (सितार वादक) भी सुशोभित कर रहे थे। इतने बड़े-बड़े संगीतकारों की एक साथ उपस्थिति जिस एक राजदरबार में रही हो उसकी भव्यता और प्रतिष्ठा का आकलन सहज ही किया जा सकता है। 19वीं शताब्दी का यह कालखंड एक प्रकार से संगीत का स्वर्णयुग था। रजब अली खां का निधन महाराज माधो सिंह के शासनकाल के आरंभ में हुआ था। महाराजा माधो सिंह के शासनकाल में उनके दरबार में सांवल खां नामक एक रुद्रवीणा वादक थे जिनकी विलक्षण प्रतिभा का हर कोई लोहा मानता था। हुक्का पीने के बहुत शौकीन थे सांवल खां। इसलिये उनके साथ हर समय एक आदेश पालक हुक्का लिये हुए चलता था। सिर पर सवाईदार जयपुरी पगड़ी और ढाल-तलवार से लैस सांवल खां राजसी ठाठ बाट से रहते थे और मनमौजी थे। इनके वादन में बहुत मिठास था।

राजस्थान के लब्धप्रतिष्ठित रुद्रवीणा वादकों में उ. रजब अली खां के शिष्य उस्ताद मुशर्रफ खां का नाम बहुत आदर और सम्मान से लिया जाता है। ये रजब अली खां के भांजे थे और रजब अली खां की पूरी